मानकों का ज्ञान, अभिप्रेरक और कर्म का वरण

डॉ. सुजाता चौहान
अध्यक्ष
मनोविज्ञान-विभाग
रा.दे. राजकीय कन्या महाविद्यालय,
भरतपुर (राज.) 321001

व्यक्ति का व्यवहार अथवा कर्म अनेक कारणों से परिचालित होता है जैसे – मूलप्रवृत्ति (Instinct), अभिप्रेरक (Motives), संवेग, आवश्यकता, इच्छाएँ, रुचि, महत्त्वाकांक्षा, वंशानुक्रमण, सामाजिक पर्यावरण, दायित्व, सहयोग की भावना, प्रतिक्रिया, प्रतिशोध आदि। इनमें से ***'अभिप्रेरक'*** एक प्रमुख कारण है जो व्यक्ति के व्यवहार या कर्म को परिचालित करता है। अभिप्रेरक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति को उत्तेजित करते हैं तथा उस पर दबाव डालते हैं जिसके परिणामस्वरूप वह व्यक्ति मानसिक व शारीरिक असन्तुलन तथा तनाव महसूस करता है। उस असन्तुलन अथवा तनाव से समायोजन करने तथा आवश्यकता की पूर्ति के लिए क्रियाशील हो जाता है। यह क्रिया तब तक चलती है जब तक उस आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो जाती और तनाव तथा असन्तुलन समाप्त नहीं हो जाता। इस प्रक्रिया में व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि अपनी आवश्यकताओं तथा तनाव से समायोजन करने के लिए उसके व्यवहार या कर्म से अन्य व्यक्ति नकारात्मक रूप से प्रभावित नहीं हों अर्थात् दूसरों को कोई हानि नहीं हो। इस हेतु व्यक्ति को विचारपूर्वक कर्म का वरण करना होता है। कर्म के वरण के लिए कर्म के मानकों/नियमों/सिद्धान्तों का ज्ञान अपेक्षित होता है। इस पूरी प्रक्रिया में ***आवश्यकता*** एवं ***अभिप्रेरण का स्तर*** व्यवहार के मानकों अथवा नियमों के ज्ञान और कर्म के वरण को प्रभावित करते हैं। ये कैसे प्रभावित करते हैं, इस प्रश्न पर विचार किया जाए इसके पूर्व ***'अभिप्रेरक'***, ***'मानकों का ज्ञान'*** और ***'कर्म के वरण'*** से क्या अभिप्राय है, इस पर विचार अपेक्षित है।

'अभिप्रेरक' (Motives) से अभिप्राय है व्यक्ति के व्यवहार को परिचालित करने वाले उत्प्रेरक या शक्तियाँ अर्थात् व्यक्ति को कार्य या कर्म करने के लिए प्रेरित करने वाले अथवा कार्य करने के लिए दबाव डालने वाले – बाध्य करने वाले – उत्प्रेरक या कारण **'अभिप्रेरक'** कहलाते हैं, जैसे भूख, प्यास, यौन/काम, आकांक्षा स्तर, मनोवृत्ति, सामुदायिकता आदि। अभिप्रेरक कर्षण (Pulling) बल होता है जो व्यक्ति को व्यवहार या

कर्म करने के लिए शक्ति प्रदान करता है, सक्रिय करता है, निर्देशित करता है तथा व्यवहार या कर्म को एक खास उद्देश्य या लक्ष्य की ओर ले जाता है। यह व्यवहार या कर्म को लक्ष्य की ओर तब तक बनाए रखता है जब तक लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो जाती है। इस प्रकार अभिप्रेरक व्यक्ति में लक्ष्य-निर्देशित व्यवहार उत्पन्न करता है। अन्य शब्दों में, अभिप्रेरक किसी आवश्यकता की उपस्थिति में उत्पन्न होता है, उस आवश्यकता की पूर्ति हेतु ऐसी क्रिया या व्यवहार की ओर गतिशील करता है, व्यवहार को जारी रखता है, नियमित करता है और लक्ष्य (Goal) की प्राप्ति करवाता है। अभिप्रेरक की इस प्रक्रिया के तीन तत्त्व या घटक हैं : आवश्यकता (Need), प्रणोद या चालक (Drive) और प्रोत्साहन या लक्ष्य (Incentive or Goal)। किसी व्यक्ति के शरीर में किसी चीज की कमी (Deficiency) या अधिकता (Excess) हो जाती है तो उसे ***'आवश्यकता'*** कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है : ऊतक आवश्यकता और निष्कासन आवश्यकता। शरीर में किसी चीज की कमी को ***'ऊतक आवश्यकता'*** कहते हैं, जैसे शरीर में पानी की कमी, और शरीर में किसी चीज की अधिकता को ***'निष्कासन आवश्यकता'*** कहते हैं, जैसे शरीर में मल-मूत्र की अधिकता आदि। आवश्यकता से प्रणोद/चालक उत्पन्न होता है। 'प्रणोद' आवश्यकता से उत्पन्न तनाव अथवा क्रियाशीलता है, अर्थात् आवश्यकता से उत्पन्न होने वाले तनाव या क्रियाशीलता को ***'प्रणोद'*** कहते हैं, जैसे - भूख-प्रणोद (भूख का अनुभव और उसकी क्रियाशीलता)। प्रोत्साहन अथवा लक्ष्य से अभिप्राय किसी ऐसी वस्तु या विषय की प्राप्ति से है, जिसकी प्राप्ति से आवश्यकता की पूर्ति होती है और प्रणोद में कमी हो जाती है, जैसे पानी की प्राप्ति। प्यासे व्यक्ति के लिए पानी प्राप्त करना प्रोत्साहन अथवा लक्ष्य है, उसकी प्राप्ति से (पानी पी लेने से) प्यास समाप्त हो जाती है अर्थात् तनाव तथा क्रियाशीलता में कमी आ जाती है। इस प्रकार ये तीनों - आवश्यकता, प्रणोद और प्रोत्साहन - अभिप्रेरणात्मक चक्र हैं।

अभिप्रेरक दो प्रकार के होते हैं : ***जन्मजात*** और ***अर्जित***। ***'जन्मजात अभिप्रेरक'*** वे अभिप्रेरक होते हैं जो व्यक्ति में जन्म से ही निहित होते हैं। अन्य शब्दों में, जन्म से ही निहित अभिप्रेरकों को ***'जन्मजात अभिप्रेरक'*** कहते हैं। इन अभिप्रेरकों की तृप्ति अनिवार्य है; क्योंकि इनकी तृप्ति के अभाव में व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। इसलिए इन अभिप्रेरकों को ***'शारीरिक अभिप्रेरक'*** (Physiological Motives), या ***'जैविक अभिप्रेरक'*** (Biological or Bio-Genic), या ***'प्राथमिक अभिप्रेरक'*** (Primary Motives) अथवा ***'अति-आवश्यक अभिप्रेरक'*** (Vital Motives) भी कहा जाता है। ये अभिप्रेरक

मुख्य रूप से चार हैं : भूख (Hunger), प्यास (Thirst), नींद (Sleep) और मल-मूल त्याग (Eliminative)। इनके अतिरिक्त 'काम' या 'यौन' (Sex) को भी जन्मजात अभिप्रेरक माना जाता है, क्योंकि इसके अभाव में सृष्टि (सन्तानोत्पत्ति) सम्भव नहीं है। इन जन्मजात अभिप्रेरकों - भूख, प्यास, नींद, मल-मूल त्याग और यौन/काम - से हम सभी परिचित हैं। इसलिए इनकी यहाँ अधिक चर्चा नहीं की जा रही है।

'अर्जित अभिप्रेरक' (Acquired Motive) से अभिप्राय उन अभिप्रेरकों से है जिन्हें व्यक्ति शिक्षा, समाज तथा पर्यावरण से प्राप्त/ग्रहण करता है। ये अभिप्रेरक जन्मजात नहीं होकर सीखे हुए होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं : व्यक्तिगत और सामाजिक। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में, भिन्न-भिन्न प्रयासों से, जन्मजात तथा सामाजिक अभिप्रेरकों की तृप्ति करते समय विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास हो जाता है उन्हें ही ***'व्यक्तिगत अभिप्रेरक'*** कहते हैं। ये अनेक प्रकार के हैं जिनमें से प्रमुख हैं - आकांक्षा स्तर, जीवन लक्ष्य, मद्य-व्यसन, आदत की विवशता, रुचि, अचेतन अभिप्रेरक, मनोवृत्तियाँ आदि।

किसी कार्य को करने का प्रण अथवा प्रतिज्ञा शक्ति को ***'आकांक्षा स्तर'*** कहते हैं। किसी लक्ष्य की प्राप्ति में इस अभिप्रेरक की अहं भूमिका होती है। सामान्यतः व्यक्ति जीवन में कुछ विशेष करना चाहता है अथवा बनना चाहता है। इस विशेष करने अथवा बनने की प्रवृत्ति को ***'जीवन-लक्ष्य अभिप्रेरक'*** कहते हैं। इस लक्ष्य की प्राप्ति में व्यक्ति अनेक बार दूसरों की अवहेलना तथा अहित भी कर देता है। व्यक्ति के नशा करने की आदत को ***'मद्य-व्यसन'*** कहते हैं। कुछ लोग अपने जीवन-काल में मद्य-व्यसन की आदत डाल लेते हैं जो कि एक शक्तिशाली अभिप्रेरक होता है। जब व्यक्ति को मद्य-व्यसन करने को नहीं मिलता तो उसके शरीर में इतनी क्रियाशीलता हो जाती है कि मद्य-व्यसन के लिए वह दूसरों की हत्या तक कर सकता है। प्रायः जब व्यक्ति के जन्मजात अथवा सामाजिक अभिप्रेरकों (आवश्यकताओं) की तृप्ति नहीं होती है तो उसे जो निराशा अथवा दुःख होता है। उसी से छुटकारा पाने के लिए वह नशा (मद्य-व्यसन) करने लगता है। पहले तो वह दुःख एवं निराशा से छुटकारा पाने के लिए नशा करता है। परन्तु धीरे-धीरे उसके शरीर में ऐसे परिवर्तन आ जाते हैं कि उसके लिए नशा शारीरिक आवश्यकता बन जाती है। किसी कार्य को बार-बार करने की आदत को ***'आदत की विवशता'*** कहते हैं। ये दो प्रकार की हो सकती है : अच्छी और बुरी। बुरी आदत व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए ही अच्छी नहीं होती है, जैसे चोरी करने की आदत, असत्य बोलने की आदत आदि। ***'रुचि'*** भी एक शक्तिशाली अभिप्रेरक

है जो व्यक्ति के व्यवहार को परिचालित करता है। प्रत्येक कार्य में व्यक्ति की रुचि नहीं होती है। जिस कार्य में रुचि होती है उस कार्य में व्यक्ति की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। ***'अचेतन अभिप्रेरक'*** वे अभिप्रेरक हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को परिचालित तो करते हैं परन्तु व्यक्ति उनसे अनभिज्ञ होता है, जैसे किसी वस्तु अथवा परिस्थिति से असाधारण भय होना।

'सामाजिक अभिप्रेरक' वे अभिप्रेरक हैं जिन्हें व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों से सीखता है। इन अभिप्रेरकों को व्यक्ति अपने को सामाजिक रूप से श्रेष्ठ बनाए रखने के लिए सीखता है। ये अभिप्रेरक कुछ ऐसे होते हैं जिसके बिना व्यक्ति जैविक रूप से तो जिन्दा रह सकता है परन्तु सामाजिक रूप से उसका जीवित रहना सम्भव नहीं है। सामाजिक अभिप्रेरकों में मुख्य रूप से हैं- उपलब्धि अभिप्रेरक, सामुदायिकता अभिप्रेरक, सत्ता अभिप्रेरक, आक्रमणशीलता अभिप्रेरक, अनुमोदन अभिप्रेरक आदि। अधिक से अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करने वाला अभिप्रेरक ***'उपलब्धि अभिप्रेरक'*** कहलाता है। जिन व्यक्तियों में उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है वे अपने जीवन में अधिक से अधिक उच्च स्तर की सफलता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। यह सभी व्यक्तियों में समान रूप से नहीं पाया जाता है। किसी में कम होता है और किसी में अधिक। समाज में दूसरों के साथ रहने की प्रवृत्ति को ***'सामुदायिकता अभिप्रेरक'*** कहते हैं। अन्य व्यक्तियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति ***'सत्ता अभिप्रेरक'*** है। अन्य शब्दों में, दूसरों के संवेग या व्यवहार पर इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता को ***'सत्ता अभिप्रेरक'*** कहते हैं। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को शाब्दिक रूप से या शारीरिक रूप से चोट पहुँचाने के लिए प्रेरित करने वाला अभिप्रेरक ***'आक्रमणशीलता अभिप्रेरक'*** कहलाता है। दूसरों से प्रतिष्ठा, प्रशंसा आदि पाने के लिए प्रेरित करने वाला अर्थात् दूसरों से स्वयं का धनात्मक मूल्यांकन के लिए प्रेरित करने वाला अभिप्रेरक ***'अनुमोदन अभिप्रेरक'*** कहलाता है।

मानकों के ज्ञान से क्या अभिप्राय है? यह एक जटिल प्रश्न है। यहाँ मानकों (नियम/सिद्धान्त) के ज्ञान से अभिप्राय है सूचनात्मक एवं क्रियात्मक अर्थात् भाषा के माध्यम से सूचनात्मक जानकारी और कर्म या क्रिया रूप में उसका व्यवहार। अन्य शब्दों में, मानकों (नियम अथवा सिद्धान्त) की सूचनात्मक जानकारी ओर उनके आचरण में अनुरूपता, जैसे 'सत्य बोलना चाहिए' इस नियम एवं इसके सिद्धान्त की हमें भाषा के

माध्यम से जानकारी मिली। अब, इस सूचनात्मक जानकारी के अनुसार हमें व्यवहार में सत्य वचन बोलने का आचरण भी करना। इन दोनों में यदि अनुरूपता है तब कहा जा सकता है कि सत्य अथवा सत्य के मानक का ज्ञान है। किन्तु सामान्यतः देखा जाता है कि मानकों की सूचनात्मक जानकारी तो होती है (अनेक व्यक्तियों को तो सूचनात्मक जानकारी भी नहीं होती) लेकिन व्यवहार में उनका आचरण नहीं होता है। तब प्रश्न उठता है, ऐसा क्यों अर्थात् व्यवहार में मानकों के अनुरूप आचरण क्यों नहीं? शायद ऐसा इसलिए कि मानकों का सही मायने में ज्ञान नहीं होता है अथवा आंशिक ज्ञान ही होता है, पूर्ण नहीं। तब, फिर प्रश्न उठता है कि मानकों का पूर्ण ज्ञान कैसे हो? यह विचारणीय प्रश्न है।

'कर्म के वरण' से अभिप्राय है व्यक्ति के सामने एक से अधिक ऐच्छिक कर्म (उचित-अनुचित कर्म भी) हैं जिनमें से किसी एक कर्म का स्वतन्त्रतापूर्वक चुनाव करना। उल्लेखनीय है, कर्म के वरण में व्यक्ति की स्वतन्त्रता अनिवार्य है। यदि व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है तब वहाँ कर्म का वरण सम्भव नहीं है, जैसे सत्य बोलने या नहीं बोलने के लिए व्यक्ति स्वतंत्र है।

अब, इस प्रश्न को लें कि 'अभिप्रेरक' (Motives) मानकों के ज्ञान तथा कर्म के वरण को कैसे प्रभावित करते हैं? इस प्रश्न के जबाव से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं जिनका यहाँ उल्लेख अपेक्षित है :

पहले, सामान्यतः व्यक्ति का व्यवहार अभिप्रेरकों द्वारा परिचालित होता है, न कि कर्म या व्यवहार के मानकों या नियमों के अनुसार।

दूसरे, जब कर्म के वरण का प्रश्न आता है वहाँ व्यक्ति के पास कर्म के वरण के लिए दो निर्धारक होते हैं, एक कर्म के 'मानक का ज्ञान स्तर' और दूसरा 'अभिप्रेरण स्तर'।

तीसरे, सामान्यतः व्यक्ति उचित कर्म का वरण इसलिए नहीं करता कि वह उचित है, बल्कि इसलिए करता है कि या तो उस कर्म से व्यक्ति के किसी हित की सिद्धि हो रही होती है या फिर दण्ड मिलने के भय के कारण करता है न कि स्वेच्छा से या उस कर्म के करने से व्यक्ति को कोई हानि नहीं हो रही है अर्थात् उस कर्म के करने से व्यक्ति पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

चौथे, सामान्यतः अधिकांश व्यक्तियों को मानकों का ज्ञान होता ही नहीं है या आंशिक ज्ञान अथवा सूचनात्मक जानकारी ही होती है पूर्ण ज्ञान नहीं होता।

पाँचवें, मानक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक नहीं होते हैं (विभिन्न समाजों, जातियों, धर्मों, संस्कृतियों, राष्ट्रों आदि में भिन्न-भिन्न होते हैं)। वे मात्र मार्गदर्शक होते हैं। निर्णय व्यक्ति विशेष को परिस्थिति विशेष के अनुसार लेने होते हैं।

छठवें, व्यक्ति में जैसे-जैसे मानकों का ज्ञान स्तर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे अभिप्रेरण स्तर न्यून होता चला जाता है।

सातवें, मानक जब स्वयं अभिप्रेरक बन जाते हैं (बहुत कम व्यक्तियों में बन पाते हैं) तब मानक और अभिप्रेरक का विरोध समाप्त हो जाता है और व्यक्ति मानक के अनुसार ही कर्म करता है। वहाँ कर्म के वरण की समस्या समाप्त हो जाती है; क्योंकि वहाँ कर्म का मानक भी वही होता है जो उसका अभिप्रेरक है और अभिप्रेरक भी वही है जो उसका मानक है।

अब, अभिप्रेरकों द्वारा 'मानकों के ज्ञान' तथा 'कर्म के वरण' को प्रभावित करने के प्रश्न के जबाव में कहा जा सकता है कि जब और जहाँ कर्म के वरण की परिस्थितियाँ आती हैं वहाँ हमारे सामने कर्म के वरण के निर्धारक दो होते हैं - एक कर्म के मानक या नियम का ज्ञान स्तर और दूसरा अभिप्रेरण स्तर। जहाँ अभिप्रेरण स्तर न्यून होता है और मानक का ज्ञान स्तर उच्च, वहाँ व्यक्ति कर्म का वरण मानक के अनुसार कर लेता है और जहाँ अभिप्रेरक स्तर उच्च तथा मानक का ज्ञान स्तर न्यून होता है वहाँ व्यक्ति अभिप्रेरक के अनुसार कर्म का वरण कर लेता है। किन्तु जहाँ मानक का ज्ञान स्तर और अभिप्रेरण स्तर समान हों वहाँ मानक के ज्ञान और अभिप्रेरक में संघर्ष होता है और व्यक्ति अन्तर्द्वन्द्व में पड़ जाता है। मानक के ज्ञान और अभिप्रेरक के इस संघर्ष में अन्ततोगत्वा, अधिकांश स्थितियों में, मानकों का ज्ञान हार जाता है और अभिप्रेरक जीत जाते हैं तथा व्यक्ति कर्म के अनौचित्य को जानते हुए भी उसी अनुचित कर्म का वरण करता है।

अन्त में, मेरी कुछ जिज्ञासाएँ हैं जो आप सभी के सामने निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत हैं –

1. अभिप्रेरक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिन कर्मों या व्यवहार को परिचालित करते हैं उसमें कर्म के करने में व्यक्ति के स्वातन्त्र्य की क्या तथा कहाँ तक भूमिका है?
2. अभिप्रेरकों की तीव्रता तथा कर्म की बाध्यता (अभिप्रेरक जिस कर्म को करने के लिए व्यक्ति को बाध्य करते हैं उस कर्म) से किस प्रकार बच सकते हैं तथा वहाँ कर्म के औचित्य का स्वरूप क्या होगा? इस सन्दर्भ में दार्शनिक पक्ष क्या होगा?
3. अनेक बार मानकों/नियमों/सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार करने का प्रयास मनो-शारीरिक असन्तुलन तथा तनाव पैदा करता है, ऐसा क्यों तथा उससे कैसे बचा जा सकता है?
4. मानकों/नियमों/सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने पर सामान्यतः व्यक्ति का विकास या प्रगति रुक जाती है (जो मानकों के अनुसार आचरण नहीं करते हैं उनकी अपेक्षा) और वह पिछड़ जाता है (यह बात जाति, समाज, और राष्ट्र पर भी घटित होती है)। ऐसा क्यों? इस समस्या का दार्शनिक समाधान क्या हो सकता है?
5. कारगर, व्यावहारिक और प्रगतिशील सिद्धान्त निर्माण की दार्शनिक पद्धति क्या हो सकती है?
6. नैतिक/उचित/शुभ कर्मों का ज्ञान होने पर भी व्यक्ति उसमें प्रवृत्त नहीं हो पाता और अनैतिक/अनुचित और अशुभ को जानकर भी उनसे निवृत्त नहीं हो पाता। ऐसा क्यों?

❐ ❐ ❐